उत्कीर्तन सूत्र : एक विवेचन

श्री प्रेमचन्द जैन चपलोद

चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति या गुणानुवाद करना 'उत्कीर्तन' है। इस उत्कीर्तन से दर्शन (सम्यग्दर्शन) की विशुद्धि होती है। तीर्थंकरों का गुणानुवाद आध्यात्मिक शान्ति एवं आनन्द की प्राप्ति में सहायक होता है तथा साधना के उच्च शिखर पर आरोहण का मनोबल प्रदान करता है। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के मंत्री श्री प्रेमचन्द जी जैन के इस लेख में लोगस्स के पाठ की महत्ता उजागर हुई है। *-सम्पादक*

वीतराग वाणी समग्रता लिए हुए है। उसी वीतराग वाणी को स्थानकवासी जैन परम्परा ३२ आगम प्रमाणरूप मानती है। चरम आगम आवश्यक सूत्र त्रिकाल साधना का परिचायक है। इसमें अतीत की आलोचना, वर्तमान में समभाव की साधना व अनागत के प्रत्याख्यान द्वारा कर्मों की निर्जरा की जाती है।

अनुयोगद्वारचूर्णि में 'आवश्यक' शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है- 'सुण्णमप्पाणं तं पसत्थभावेहिं आवासेतीति आवासं' अर्थात् जो आत्मा गुणों से शून्य है उसे प्रशस्त भावों (गुणों) से आवासित करे वह आवश्यक कहलाता है।

आत्मा के हितार्थ जो क्रिया प्रतिदिन की जाती है, वह ही आवश्यक है। अनुयोगद्वार सूत्र में कहा गया है-

समणेण सावएण य अवस्सं कायव्वं हवइ जम्हा।
अंते अहो-निसस्स य तम्हा आवस्सं नाम।।

अर्थात् साधु एवं श्रावक द्वारा नियमित रूप से दिन व रात्रि के अन्तिम मुहूर्त्त में जो साधना की जाती है वह आवश्यक है। आवश्यक के छः भेद किये गये हैं-

१. सामायिक २. चतुर्विंशतिस्तव (उत्कीर्तन) ३. वन्दना
४. प्रतिक्रमण ५. कायोत्सर्ग ६. प्रत्याख्यान

इन षडावश्यकों में प्रथम आवश्यक के बाद दूसरा आवश्यक है- उत्कीर्तन आवश्यक। आम बोलचाल की भाषा में इसको 'लोगस्स' का पाठ भी कहते हैं। उत्कीर्तन का सामान्य अर्थ होता है- गुणगान या प्रशंसा। इस आवश्यक में किसी सामान्य पुरुष के गुणगान या प्रशंसा न करके उन महापुरुषों का गुणगान या प्रशंसा की गई है जिन्होंने रागादि आत्मरिपुओं का नाश करके केवलज्ञान प्रकट करते हुए अपनी आत्मा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को उज्ज्वल और प्रकाशमान बनाया है।

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी लोक के प्रकाश पुंज, धर्म तीर्थ स्थापक, वीतराग भगवन्त जो त्याग, वैराग्य और संयम-साधना में उत्कृष्ट आदर्श रूप हैं, राग-द्वेष विजेता, काम-क्रोधादि अंतरंग शत्रुओं के नाशक, केवलज्ञानी हैं ऐसे चौबीसों तीर्थंकरों की स्तुति करना या गुणानुवाद करना या उनके गुणों का कीर्तन करना, उत्कीर्तन सूत्र या चतुर्विंशतिस्तव सूत्र कहलाता है।

हमारा अन्तिम लक्ष्य अरिहन्त दशा को प्राप्त करना है और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन महापुरुषों का आलम्बन आवश्यक है जिन्होंने लक्ष्य को प्राप्त किया है। क्योंकि जो स्वयं अपूर्ण है उससे कभी दूसरे को पूर्णता की प्राप्ति की कल्पना नहीं की जा सकती हैं। पूर्ण ज्ञानी एवं कषायरहित आत्मा की भक्ति करने हेतु उत्कीर्तन सूत्र का विधान किया गया है। इसमें उन्हीं महापुरुषों का वर्णन है जिनके कि राग का दाग नहीं व द्वेष का लवलेश नहीं है। उत्कीर्तन (प्रशंसा) अरिहन्त भगवन्तों का हो इसलिए दूसरे आवश्यक से पूर्व सामान्य आवश्यक में सावद्य योगों से निवृत्त हुआ जाता है। पाप रूपी कीचड़ से सना व्यक्ति पहले आवश्यक 'सामायिक' में पापों को विराम लगा दे, तभी तीर्थंकरों की स्तुति करने की योग्यता प्राप्त करता है। तीर्थंकर भगवन्तों के नाम व गुणों की स्तुति करना उत्कृष्ट भक्ति को परिलक्षित करता है, इसलिए इसे 'भक्ति आवश्यक' भी कहा जाता है। मोक्षमार्ग के उपाय- सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र में प्रमुख 'सम्यग्दर्शन' भक्ति से ही संबंधित है। वैदिक दर्शन भी ज्ञानयोग, भक्तियोग व कर्मयोग का निरूपण करता है। इसलिए साधक के जीवन में 'भक्ति' साधना का महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रशंसनीय की प्रशंसा करना ही भक्ति है।

तीर्थंकर भगवन्तों के गुणों की स्तुति करने से श्रावक को भी उनके गुणों को प्राप्त करने का मनोबल प्राप्त होता है। अहंकार कम होता जाता है और गुणों की प्राप्ति में अभिवृद्धि होती है। साधनामार्ग में साधक आगे बढ़ता है। शुभ भावों की प्राप्ति से दर्शन-ज्ञान प्राप्त होता है और उससे आत्मा में लगे कर्ममल की सफाई होने लगती है तथा अन्ततः वह निर्मल होकर वीतरागता को प्राप्त करती है। चतुर्विंशतिस्तव का मूल पाठ निम्न प्रकार है-

चतुर्विंशतिस्तव

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ।।१।।
उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ।।२।।
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयलसिज्जंस वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ।।३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे, मुणिसुव्वयं नमिजिणं च।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ।।४।।
एवं मए अभिथुआ, विहूयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ।।५।।
कित्तिय-वंदिय-महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्ग-बोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु ।।६।।
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवर-गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।७।।

(By uttering the above lesson we offer our worship to Twenty Four Tirthankar Gods. By constant chanting of the Lord's names, our evils are destroyed and it purifies the mind. A pure mind only can receive virtues.)

(लोगस्स के उपर्युक्त पाठ द्वारा चौबीसों तीर्थंकरों की स्तुति की जाती है। बार-बार प्रभु का नाम स्मरण करने से हमारे कर्म क्षय होते हैं व आत्मा निर्मल होती है। निर्मल आत्मा ही सद्गुणों को ग्रहण करती है)

चतुर्विंशतिस्तव का मनोयोग पूर्वक गाथा छन्द में भावसहित उच्चारण करते हुए रोम-रोम का पुलकित होना उत्कृष्ट कर्म-निर्जरा का हेतु बनता है। प्रत्येक गाथा तीर्थंकरों की विशेषताओं को प्रकट करने वाली है। प्रथम गाथा में तीर्थंकरों के चार अतिशयों का वर्णन किया गया है। **लोगस्स उज्जोयगरे**- लोक में उद्योत करने वाले अर्थात् इस विषय-वासना से पूरित संसार में वीतराग वाणी का उद्योत करने वाले तीर्थंकर भगवन्त प्रकाश पुंज के समान हैं। **धम्मतित्थयरे**- धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले अर्थात् तीर्थंकर जब चार धर्मतीर्थों अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक व श्राविका रूप तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं तभी से तीर्थंकर संज्ञा से उपमित होते हैं। **जिणे**- जीतने वाले। अर्थात् जयतीति जिनः। जिन्होंने स्वरूपोलब्धि में बाधक राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोध आदि भाव कर्मों को तथा ज्ञानावरणीयादि द्रव्यकर्मों को जीत लिया है, वे जिन होते हैं। **अरिहन्ते**- अरिहन्त अर्थात् अरि+हन्त =आन्तरिक शत्रुओं के नाशक, जिनके अन्दर केवलज्ञान रूपी अलौकिक सूर्य प्रकाशमान है। प्रथम गाथा में तीर्थंकरों के इन चार अतिशयों का वर्णन करते हुए उनकी स्तुति करने के लिए साधक प्रतिज्ञाबद्ध होता है।

दूसरी से चौथी गाथा में वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थंकरों का नाम सहित गुण वर्णन किया गया है। इसमें यह विशेषता है कि प्रत्येक तीर्थंकर का नाम उनके जीवन से संबंधित घटना विशेष के आधार पर अथवा विशेष अर्थ रूप में वर्णित है। नौवें तीर्थंकर के दो नाम श्री सुविधिनाथ जी तथा पुष्पदंत जी इसमें प्रयुक्त हुए हैं। १९वें तीर्थंकर श्री मल्लीनाथ जी स्त्री पर्याय में हुए। ये तीन गाथाएँ अशाश्वत होती हैं। क्योंकि जिस काल में जो चौबीसी होती है, उसी के अनुसार इनकी रचना मानी गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँचवीं गाथा में तीर्थंकर भगवन्तों को कर्मरूपी रजमैल से रहित वृद्धावस्था व मृत्यु के विजेता बताते हुए कहा है कि ऐसे परमाराध्य मुझ पर प्रसन्न होवें। तीर्थंकर किसी पर न तो प्रसन्न होते हैं न ही किसी से नाराज होते हैं, यह शाश्वत नियम है। फिर भी इस गाथा में अपेक्षा को ध्यान में रखते हुए कहा है कि जिस प्रकार सूर्य की पहली किरण के साथ कमल का फूल खिल जाता है, उसी प्रकार तीर्थंकरों के गुणानुवाद से मुझे आत्मिक उल्लास प्राप्त हो, मेरे भाव शुद्ध बनें, मैं शिवपदगामी बनूँ यही मुझ पर तीर्थंकरों की प्रसन्नता है।

छठी गाथा में त्रियोगों को स्तुत्य क्रम से समायोजित कर कहा है कि सर्वप्रथम में वचन योग से आपका कीर्तन करता हूँ तत्पश्चात् काय योग से नमन करता हूँ और फिर मनोयोग से आदर-बहुमान करता हूँ। क्योंकि आप लोक में उत्तम हैं। जैसा कि भक्तामर स्तोत्र की एकादश गाथा प्रकट करती है-

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं।
निर्मापितस्त्रिभुवनैक - ललाम - भूतः॥
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्याम्।
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति॥

अर्थात् हे त्रिभुवन के एकमात्र ललामभूत भगवन्! जिनशान्ति भावों के धारक कान्तिमान परमाणुओं से आप बनाये गये हैं, वे परमाणु भी निश्चित ही उतने ही थे, क्योंकि आप जैसा उत्तम इस लोक में कोई नहीं है।

आगे तीर्थंकरों से आरोग्य (आत्म-शान्ति), बोधिलाभ (सम्यग्ज्ञान) तथा श्रेष्ठ समाधि की अभिलाषा की गई है। तीर्थंकर कुछ देते नहीं है, लेकिन उनका गुणानुवाद करने से सहज ही उपर्युक्त अभिलाषा की पूर्ति हो जाती है। जैसे अंजन नहीं चाहता है कि मैं किसी की नेत्र ज्योति बढ़ाऊँ तथापि उसके उपयोग से नेत्र की ज्योति बढ़ती है ठीक उसी प्रकार निष्काम, निस्पृह वीतराग परमात्मा भले ही किसी को लाभ पहुँचाना न चाहें, किन्तु उनके स्तवन से लाभ अवश्य ही प्राप्त होता है।

अन्तिम गाथा में तीर्थंकरों को चन्द्र, सूर्य व महासमुद्र से अधिक क्रमशः निर्मल, प्रकाशक व गंभीर बताकर अन्तिम लक्ष्य सिद्धि की चाहना की गई है। 'अपि' शब्द महाविदेह क्षेत्र में विचरण करने वाले तीर्थंकरों (विहरमानों) को समाहित करता है। तीर्थंकरों के जीवन में निरूपित गुणों को धारण कर सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

लोगस्स के उपर्युक्त पाठ में सात गाथाओं में से प्रथम, पंचम, षष्ठ एवं सप्तम गाथा शाश्वत है, अपरिवर्तनीय है, लेकिन गाथा द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ परिवर्तनीय है। जब तीर्थंकर-चौबीसी बदलती है तो इन गाथाओं में आने वाले तीर्थंकर प्रभुओं के नाम भी बदलते रहते हैं। उपर्युक्त पाठ में वर्तमान चौवीसी के नाम आये हुए हैं।

चतुर्विंशतिस्तव के फल के बारे में उत्तराध्ययन सूत्र के अध्याय २९ में श्री गौतमस्वामी के द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृच्छा-

'चउव्वीसत्थएणं भंते! जीवे किं जणयइ?'

हे प्रभु! चतुर्विंशतिस्तव से आत्मा को किस फल की प्राप्ति होती है।

भगवान् ने फरमाया- 'चउवीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ।'

हे गौतम! चतुर्विंशतिस्तव से जीव के दर्शन (श्रद्धा) में बाधा उत्पन्न करने वाले कर्म दूर हो जाते हैं और सम्यक्त्व में रहे हुए चल-मल अगाढ़ दोष दूर होकर शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

प्रथम आवश्यक सामायिक में समभाव में स्थिर होने पर आत्मा, वीतराग भगवंतों के गुणों को जान सकती है व उनका गुणानुवाद कर सकती है। अर्थात् जब आत्मा समभाव में स्थिर हो जाती है तब ही भावपूर्वक तीर्थंकरों का गुणानुवाद किया जा सकता है, इस कारण से सामायिक के बाद दूसरे आवश्यक के रूप में चतुर्विंशतिस्तव रखा गया है।

आवश्यक निर्युक्ति में षडावश्यक के निरूपण में दूसरे अध्ययन चतुर्विंशतिस्तव में नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन छः निक्षेपों की दृष्टि से उत्कीर्तन सूत्र पर प्रकाश डाला गया है। चूर्णि साहित्य में स्तव, लोकउद्योत, धर्मतीर्थंकर आदि पदों पर निक्षेप दृष्टि से चिन्तन किया गया है।

उत्कीर्तन सूत्र में परमोच्च शिखर पर पहुँचे हुए तीर्थंकरों के गुणों का अवलम्बन लेकर मोक्षमार्ग की साधना का मार्ग प्रशस्त होता है।

इस उत्कीर्तन सूत्र में चौबीसों तीर्थंकरों की स्तुति के अलावा २० विहरमान एवं सिद्ध आत्माओं को भी वन्दन करते हुए उनका आलम्बन लेकर स्वयं प्रेरणा प्राप्त कर सिद्ध बनने की कामना व्यक्त की गई है।

-मंत्री, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल,
२२, गीजगढ़ विहार, हवा सड़क, जयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org